International Journal of Applied Research 2019; 5(3): 298-300

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(3): 298-300
www.allresearchjournal.com
Received: 16-01-2019
Accepted: 17-02-2019

डॉ० राम बालक राय
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० राम बालक राय
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

बौद्ध–वाङ्मय में ब्राह्मण : एक समीक्षा

डॉ० राम बालक राय

सारांश–
प्राचीन भारत में कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था थी जिसका वर्तमान जन्म आधारित जाति व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं और भगवान् बुद्ध ने अपने व्यवहारिक जीवन में वैदिक वर्ण व्यवस्था का ही पालन किया किसी अन्य व्यवस्था का नहीं। बौद्ध दृष्टि में ब्राह्मण को कर्म के आधार पर सामाजिक सम्मान देना उचित है। ये कर्म कैसे हों, इसकी विस्तृत विवेचना धम्मपद में दी गयी है जिसके पार–अपार का ज्ञान किसी को न हो, जो सभी तरह के विद्वेष से मुक्त हो, वही ब्राह्मण है। जो चित्त को सभी दोषों से मुक्त कर आसन पर आसीन हो ध्यानरत रहे तथा निरन्तर उत्तम अर्थ की प्राप्ति में संलग्न रहे, वही ब्राह्मण है।

प्रस्तावना–
भगवान् बुद्ध ने संन्यास धारण से पूर्व सदैव क्षात्र धर्म का पालन किया तथा संन्यास लेने के पश्चात् अपने कर्म एवं योग्यतानुसार ब्राह्मण वर्ण को धारण किया। भगवान् बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन में ऐसा कोई प्रसंग नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि उन्होंने दलितवाद को धारण किया और ब्राह्मणवाद को गालियाँ दीं जबकि इसके विपरीत ऐसे कई प्रमाण हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि वह संन्यास के बाद स्वयं को ब्राह्मण कहते थे। भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मण के सन्दर्भ में जो व्याख्या की है वह वैदिक शास्त्रों के अनुसार ही की है उससे भिन्न नहीं। भगवान् बुद्ध ब्राह्मण किसे मानते थे इसका वर्णन धम्मपद के ब्राह्मण वर्ग में इस प्रकार है–
दिन में सूर्य तपता है और रात में चन्द्रमा अपनी शीतल किरणें बिखेरती है, अस्त्रों शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय क्षत्रिय में ताप (तेज) उत्पन्न होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण जब ध्यानरत होता है तो उसमें ताप का प्रादुर्भाव होता है। [1] ब्राह्मण को अपहृत करने या उसे मुक्त करने की आवश्यकता किसी को नहीं होती, उसे तो उसकी वृद्धि ही अपहृत करती है तथा उसी से उसे मुक्ति भी मिलती है। आशय यह है कि राग, द्वेष और कामाचार में लिप्त रहना ही एक तरह का अपहरण और इससे मुक्ति ही एक प्रकार की मानसिक स्वतन्त्रता है। जो ब्राह्मण अपनी बुद्धि को उल्टी दिशा में घुमाकर राग–द्वेष से वशीभूत होता है तो उसे वासनाएँ अपहृत कर ही लेती है, लेकिन जो अपनी बुद्धि को सही दिशा में ले जाता है या जो सत्य या जीवन के यथार्थ को अपनी बुद्धि की सहायता से खोज लेता है उसे यही मुक्त भी कर देती है। जैसे–[2]

'न ब्राह्मणरस पहीबा, बारस गु चंथ ब्राह्मणो।
ध ब्राह्मणरस हन्तारं ततो घी यरस मुद्यति।।'

जो अपनी काया, वाचा और मनसा द्वारा किसी का अपकार नहीं करता, जो तीन–स्थानों पर अविचल और निर्विकारभाव से खड़ा रहता है, वही ब्राह्मण है। जो धर्म के गूढ तत्त्व को समझकर आचरण करता है, ऐसा अग्निचेता ब्राह्मण सभी के लिये वन्दनीय है। [3] जटायें बढ़ा लेने मात्र से तथा अपने गोत्र की उत्तमता को सदा चिल्ला–चिल्ला कर कहने वाला ब्राह्मण कुलीन नहीं है, उसकी कुलीनता उस समय प्रभावित करती है जब उसमें सत्व और धर्म के अनुरूप ही करने की प्रबल आकांक्षा हो, वही ब्राह्मण की पवित्रता है और इसी से वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी होता है। जैसे–[4]

'नजटाहि न जीतेन न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यग्हि सच्च न धग्गो च सो सुची से च ब्राह्मणो।।'

जिसे जो कुछ मिले उसे ही धारण कर ले और किसी भी वस्तु के प्रति जिसके मन में कोई चाह न हो और जो एकाकी ही वन में रहकर ध्यानरत रहे उसे ब्राह्मण कहेंगे। ब्राह्मण उसे कैसे माना जाय जो पग–पग कर अपनी आसक्ति का परिचय दे और अनेक भोगों की चाह जिसके मन में बनी रहे,

यह तो उसकी किंचन मनोवृत्ति का द्योतक है, ब्राह्मण तो वह है जो अकिंचन भाव से विना किसी का कुछ लेने की इच्छा रखता हुआ अपना जीवन व्यतीत कर दे। [5]

यह गृहस्थ जीवन सभी को अनेक कामनाओं से जकड़े रहता है। ब्राह्मण भी तो गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, पर उसे यह जीवन किस रूप में जीना है, इसका विचार तो उसे ही करना है। इस गृहस्थ जीवन में उसे अनासक्त भाव से रहना है और किसी दायित्व को समर्पण की भावना से पूरा करना है। गृहत्याग करने पर भी उसके मन में यह भाव नहीं रहे कि अब उसका जीवन कैसे बीतेगा, पर वह निर्भय और निद्वन्द्व रहकर विचरण करे, यही ब्राह्मण का लक्षण है। [6] हिंसा से विरक्ति ब्राह्मण के व्यक्तित्व का सबसे बड़ा पहलू है। जो अपने हाथों में दण्ड लेकर इस जगत प्राणी को नहीं सताता है और न मारता ही है, उसे ही ब्राह्मण कहा जाता है। जो अपने विरोधी के प्रति भी अविरोधी बना रहे, जो कृपण के प्रति भी उदार बना रहे वही ब्राह्मण है। जिसे न इस लोक में आशा है न परलोक में, जो हर अवस्था में आशा रहित जीवन बिताए वही सय्या ब्राह्मण है। जिसके सामने, पीछे या मध्य में कामना नाम की कोई चीज ही नहीं रह गयी है, जो हर अवस्था में जो कुछ है, उसी से काम चलाये और जो नहीं है उसके लिये मन में कोई ग्लानि का अनुभव नहीं करे, उसे ही ब्राह्मण कहा जाता है। [7] नाना रत्नों, वस्त्रालंकारों, उत्तम शयनासनों और धनधान्य से परिपूर्ण जनपद में रहता हुआ ब्राह्मण धर्म को अनेक प्रकार से रक्षा करता है। वह अपने द्वार पर आये हुए किसी भी व्यक्ति का अपमान नहीं करता है, यह उसके निरभिमानी स्वभाव के होने का परिचायक है। जैसे–[8]

'नाना रत्तेहि सयनेहावसंथहि च।
फीता जनपदा रद्वा ते नमस्सिसुं ब्राह्मणो।।
'अबझा ब्राह्मणा आसुं अजेल्या धग्गरखिता।
न ने कोचि निबारेसि कुलद्वारंसु सब्बसो।।'

बौद्धमत में ब्राह्मणों का सभी सांसारिक वस्तुओं से विरति ही अनेक ब्राह्मणत्व का द्योतक माना जाता है। अतः जातकों में यह कहा गया है कि जिसके पास न खेत आदि है, जिसका न कोई बन्धु है जिसकी न किसी से ममता है, जिसे न किसी चीज की आशा है जिसे किसी प्रकार का पाप–लोभ नहीं है, जो संसार के लोभ से रहित है– ऐसा जिसका आचरण है और जो जीवन किसी भी रूप में जीता है, उसे ही ब्राह्मण कहा जाता है। ऐसा करने वाला ब्राह्मण का ही कल्याण होता है और ऐसा ही होने पर वह धर्म में स्थिर होता है। जैसे–[9]

'अखेतबन्धु अगगो निरासो गिल्लोमपापो भवलोभखीणो।
एवं करो ब्राह्मणो होति खेमी धम्मेन्ति अपापयिंसु।।'

जातकों में इस तथ्य का आभास मिलता है कि विभिन्न पेशों से सम्बद्ध होने और जीविका के लिये तरह–तरह का काम करने की मानसिक स्थिति वाले ब्राह्मणों के दो भेद हो चुके थे। जो उच्च आदर्श एवं त्यागमय जीवन कभी ब्राह्मणों का था, उसे भुलाकर कुछ ब्राह्मण उदरपूर्ति के लिए ऐसे भी छोटे–बड़े कार्य करने लगे थे जो उनके जातीय स्वरूप के अनुकूल न था। उनके व्यक्तित्व और उनकी गरिमा में तेजी से गिरावट आयी और वे ऐसे भी ओछे और स्तरहीन कामों में दिलचस्पी लेने लगे थे जो उनके पूरे समुदाय को कलंकित करता है। जातकों में ऐसे कार्यों की एक विस्तृत सूची दी गयी है, जिन्हें ब्राह्मण करके भी अपने को ब्राह्मण कहलाने में संकोच का अनुभव नहीं करते थे जबकि तद्युगीन समाज में उनके इस दृष्टिकोण की आलोचना हुआ करती थी। ब्राह्मणों में कुछ ऐसे थे जो जड़–मूल से भरी हुई थैलियाँ लेकर, दवाओं की पोटरियाँ बाँध–बाँध कर लोगों को देते थे। दिखावे के लिये स्नान और जप दोनों करते थे ताकि समाज उन्हें ब्राह्मण के रूप में ही देखें। यथार्थ तो यह था कि वे चिकित्सक का व्यवसाय अपनाकर भी ब्राह्मण कहलाते थे, पर बौद्धमत में वे ब्राह्मण न होकर चिकित्सक ही थे। ऐसे ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा देने से कोई फल नहीं निकलता और इनके स्थान पर सदाचारी. बहश्रुत बाह्मणों को ही भोजन के लिए आमन्त्रित कर उन्हें दान देना महाफदायक होगा, यह लोकधारणा प्रचलित थी। कुछ ब्राह्मणों की टोलियाँ घंटियाँ लेकर आगे–आगे हुए बताते हुए चलते थे, वे बारी–बारी से कभी सन्देशवाहक बनते तो कभी रथ की बागडोर संभालते। इस तरह उनका व्यक्तित्व सेवक का हो गया पर अपने आपको ब्राह्मण कहते थे। कुछ ब्राह्मण अड़ियल स्वभाव के थे जो तरह–तरह का आडम्बर दिखाकर किसी तरह धन की प्राप्ति चाहते थे। ये टेढ़ा–मेढ़ा डंडा और कमण्डल लेकर गाम–निगम में राजाओं की सेवा में रहते थे। वे गांव में बन बैठकर यह कहते थे कि जबतक हमें कुछ मिलेगा नहीं हम यहाँ ने नहीं उठेंगे। उनका स्वभाव कर वसूलने वालों जैसा कठोर था फिर भी वे ब्राह्मण कहलाते थे। जैसा कि पिछले एक सन्दर्भ में कहा गया है, ब्राह्मण वहीं है जो खरीद–बिक्री जैसे कार्यों से अपनी जीविका नहीं चलाते और इस आदर्श का जिन्होंने पालन किया वे ही बौद्धमत में ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी थे। परन्तु ये आदर्श उस समय खण्डित हो गये जब हरड़ आँवला, आम, जामुन, लीची, दातुन, लकड़ी के तख्ते, ऊख की टोकरियाँ, हुक्का, शहद, अंजन तथा अन्य सस्ते–महंगे सामानों की खरीद–बिक्री करने वाले कुछ ब्राह्मणों का समाज में प्रादुर्भाव हुआ। ये काम बनियाँ का करते हुए ब्राह्मण कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं।

गृहस्थजीवन में खेती–व्यापार, पशुपालन, आदि का आर्थिक महत्त्व है। ब्राह्मणों ने ये सभी कार्य करने शुरू कर दिये। धन लेकर कुमारियों को देना तथा आवाह–विवाह कराने में उनकी अभिरुचि से उनके जैसे धनलोलुप व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, पर इसके बावजूद उन्होंने ब्राह्मण कहलाने के अपने अधिकार को नहीं छोड़ा। ग्रामों में हुए कुछ पुरोहित जो बँधी हुई भिक्षा खाते थे और जिनसे लोग नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में पूछते थे वे बैलों के अण्डकोष का छेदन भी करते थे और उन्हें दागते भी थे। उनके यहाँ पशुओं की भी हत्या होती थी। वे साक्षात् गोधातक जैसे क्रूर कर्म करते थे, पर अपने आपको तथाकथित ब्राह्मण के रूप में ही प्रस्तुत करने के अभिलाषी थे। कुछ ब्राह्मण ढाल–तलवार लेकर व्यापारियों के रास्ते पर खड़े हो जाते हैं। वे काफिले से सौ–हजार लेकर जंगल पार कराते। उनका यह कार्य ग्वालों और निषादों के समान था, पर वे स्वयं को ब्राह्मण कहलाने का अपना अधिकार समझते थे। कुछ ब्राह्मण जंगल में कुटी बनाकर जाल बिछाते थे और उसमें तरह–तरह के पशु–पक्षियों को फंसाकर बेचते भी थे, खाते भी थे। उनका जीवन शुद्ध शिकारी का बन गया था, पर कहलाते थे ब्राह्मण। धन के लोभ में कुछ भी करने को प्रस्तुत ब्राह्मण ऐसे भी थे जो मंचों पर बैठकर नहाते थे। वे मैल में स्नान करने वाले के समान थे, पर अपने को ब्राह्मण कहते थे।

जो सच्चे अर्थों में ब्राह्मण थे वे बहुश्रुत और मैथुन धर्म से विरत थे। वे एकबार भोजन करते और मद्य का सेवन नहीं करते थे। उनकी आचारशुद्धि से समाज के सभी लोग प्रभावित थे। [10]

निष्कर्ष–

भगवान् बुद्ध के उपदेशों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने जीवन में कभी भी दलितपन को धारण नहीं किया और न ही किसी को दलित बनने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने ब्राह्मणत्व को धारण किया तथा अन्यों को भी ब्राह्मण बनने के लिए प्रेरित किया। अतः यदि आप भगवान् बुद्ध का अनुयायी बनना चाहते हैं तो आपको दलितपन त्याग कर ब्राह्मणत्व को धारण करना होगा तथा स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा फैलाये गये जातिवाद के जाल से निकलकर भगवान् बुद्ध की तरह वैदिक

वर्ण व्यवस्था को अपनाना होगा् भगवान् बुद्ध के उपदेश किसी जाति विशेष के लिए नहीं है अपितु उनके उपदेश सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए है।

सन्दर्भ–

1. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, श्लोक– 385–387
2. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, पृ.– 389
3. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, पृ०– 391–392
4. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, पृ०– 393
5. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, श्लोक– 395–396
6. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, श्लोक– 404
7. धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग, पृ०– 405, 406, 410, 421
8. सुत्तनिपात, ब्रह्मणधम्मिकसुत्त– 67,68
9. जा०, चतुर्थ उधालक, जा०, पृ०– 507 गा०– 10
10. जा०, चतुर्थ दस ब्राह्मण जा०, पृ०– 570, जा०– 4–48